

# संस्कृत साहित्य में प्रतिविम्बित आदिम जनजातियाँ

डॉ. मिथिलेश पाण्डेय  
एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,  
के. ए. (पी.जी.) कालेज, कासगंज (उ.प्र.)

आर्षकवि वाल्मीकि, कृष्णद्वैपायन वेदव्यास एवं महाकवि कालिदास, माघ, भास, भारवि, भवभूतिआदि के काव्यों के सुधी मीमांसक विद्वानों ने इन मनीषियों के काव्यों को भारतीय इतिहास की अन्तरात्मा के रूप में स्वीकार किया है। इनके काव्यों में प्रतिविम्बित इनके आदर्शों, इनकी मान्यताओं एवं प्रकृतिप्रधान तत्कालीन समाज का चित्रण अत्यन्त कोमलकान्त, लावण्यमयी पदावली में मधुर भावाभिभूत विम्बों के साथ प्रस्तुत किया गया है। ये भाव निश्चित ही ब्रह्मास्वादसहोदर अलौकिक रसास्वादन में समर्थ हैं।

संस्कृतसाहित्य केविभिन्न काव्यों एवं महाकाव्यों में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक विषयों के साथ-साथ अनेक विषयों का लालित्यपूर्ण समावेश किया गया है। जिसमें भारतीय संस्कृति एवं सभ्यतातथा तत्कालीन सामाजिक आदर्शों का प्रतिविम्बआज भी उसी रूप में देखा जा सकता है। वैदिक आर्यों की आदर्ष वर्णव्यवस्था, रहन-सहन, खान-पान, एवं कला-कौशल के सापेक्ष सभ्य एवं सुसंस्कृत लोगों की दृष्टि में उपेक्षित भारतीय आदिम जनजातियों का भी उल्लेख प्रसंग के अनुकूल विस्तृत वर्णन किया गया है। प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रारम्भिक काल में ये आदिम जनजातियाँ यद्यपि अपनी जन्मजात प्रवृत्तियों को अविकल रूप में बनाये रखने के प्रति अत्यन्त सजग एवं सचेष्ट थीं; फिर भी चूँकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है, जो जाने-अनजाने स्वरूप में होता रहता है। इसी परिवर्तन के फलस्वरूप आज हमें तत्कालीन आदिम सामाजिक जनजीवन एवं सभ्यता का सुसंस्कृत, सम्बद्धित एवं सुन्दर स्वरूप देखने को मिलता है। जिसका श्रेय वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, माघ, भास, भारवि, भवभूति आदि महाकवियों की लेखनी से उद्भूत विविध काव्यों एवं महाकाव्यों को प्राप्त है; क्योंकि तत्कालीन इन मनीषी महाकवियों ने विभिन्न सामाजिक सोपानों कोअत्यन्त सहेज करअपने काव्यकौशल से कभी भी समाप्त न होने वाले दिव्य स्वरूप को प्रदान किया, जो आज भी हमें उनकेवास्तविक स्वरूप का बोध कराने में सर्वथा समर्थ है; जैसा कि आचार्य दण्डी ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में लिखा है—

**आदिराजयशोविम्बमादर्शं प्राप्य वाङ्मयम्। तेषामसन्निधानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति।।**

इन प्राचीन आदिम जनजातियों में यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, किरात, नाग, पुलिन्द, राक्षस, निषाद, वनेचर, इत्यादि प्रमुख हैं; जिनके स्वरूप, रहन-सहन, क्रिया-कलाप, कबीले तथाउनसे सम्बन्धित प्रदेशों कोसंक्षिप्तरूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

**1. यक्ष**—महाकवि कालिदास ने अलकापुरी(कैलास मानसरोवर) के समीपवर्ती प्रान्त को यक्षों की राजधानीके रूप में स्वीकार किया है। सामान्यतः इन यक्षों का राक्षसों से भी रक्त सम्बन्ध था। 'यक्ष' और 'रक्ष' दोनों शब्दों का धातुमूल एक ही प्रतीत होता है। ये दोनों आदिम जातियाँ इधर-उधर घूमने फिरने वाली तथा हिंसक प्रवृत्ति वाली थीं; किन्तु बाद में 'यक्ष' प्रधानतया पर्वतीय जाति के रूप में जाने गये, जिनका मूलनिवास हिमालय की प्रमुखपर्वतश्रेणी उत्तरी कैलास का क्षेत्र था। पौराणिक साहित्य इन यक्षों के क्रियाकलापों एवं इनके विविध वृत्तान्तों से भरा पड़ा है।

**2. गन्धर्व**—प्राचीन संस्कृतसाहित्य में गन्धर्वों का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। महाकवि ने कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् के प्रथम अंक 'षटक्रतुना गन्धर्वसेनासमाविष्टा<sup>2</sup> तथा रघुवंशम्<sup>3</sup> में गज रूप प्रियम्वद गन्धर्व का उल्लेख किया है, जिसका निवास चैत्ररथ प्रदेश था, (एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्)। इसका यह नाम गन्धर्वराजचित्ररथ के नाम पर पड़ा। यह हिमालय की प्रधान शृंखला से सम्बन्धित है; क्योंकि इसकी पौराणिक स्थिति सुमेरुपर्वत से पूर्व में तथा गन्धमादन; जो सुमेरु के दक्षिण और कैलास के दक्षिणपश्चिम में स्थित है) के उत्तरपूर्व में निर्दिष्ट की गई है। अतः गन्धर्वप्रदेश हिमालय की बट्टीनाथ पर्वतश्रेणी से लेकर कैलास मानसरोवर फैला हुआ था।

'गन्धर्व'प्रजाति यक्षों एवं किन्नरों की भाँति मूलतः हिमालय की आदिम प्रजाति है। पुराणों में इन्हेंसंगीत प्रेमीदेवताओं से निम्न एवं मनुष्यों से उच्च माना गया है। ये लोग भी देवताओं की भाँतिसोमपान करने वालेथे। डॉ.रांगेय राघव के अनुसार यह गन्धर्वप्रजाति यहाँ की मूल आदिम जनजाति थी, जो बाद में आर्यों मेंघुल-मिल गई। प्राचीन आर्य लोग इन्हीं गन्धर्वों से सोमलता को खरीदते थे।<sup>4</sup> डॉ. राघव के मत में द्रविड़काल में भी भारत के उत्तरी प्रदेशों में रहने वाली अनेक जनजातियों में गन्धर्वोंका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान था।

प्रो. कनिंघम एवं सुरेन्द्रनाथ शास्त्री आदि कुछ विद्वानों ने गान्धार (अफगानिस्तान) को गन्धर्वप्रदेश मानकर उसे सिन्धुनदी के दोनों तटों पर विस्तृत स्वीकार किया है; जैसा कि रामायण के उत्तरकाण्ड<sup>5</sup>में भीगन्धर्वों कीनिवासभूमि को सिन्धुनदी के दोनों तटों पर विस्तीर्ण बतलाया गया है; किन्तु गन्धर्वप्रदेश मुख्यतः हिमालय के कैलास मानसरोवर क्षेत्र का समीपवर्ती प्रान्त था।

**3. विद्याधर**— संस्कृतसाहित्य में वर्णित विवरणों के अनुसार विद्याधरों का निवासस्थान हिमालय के मन्दाकिनी (गंगा के उद्गम क्षेत्र)का समीपवर्ती प्रान्त था<sup>6</sup>। महाराज पुरुरवा की विहारभूमि (गन्धमादन-बद्रीनाथ पर्वतश्रेणीकी उत्तरपूर्वीशृंखला) तथा दिलीप की नन्दिनी धेनुचारण-स्थली, ये सब इसी प्रान्त से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। ये लोग पर्याप्त सुषिक्षित थे; क्योंकि महाकवि कालिदास ने विद्याधर सुन्दरियों द्वारा भोजपत्र पर प्रेमपत्र लिखने का उल्लेख किया है<sup>7</sup>। गन्धर्वों के समान ये भी गानविद्या में निष्णात होते थे। इस क्षेत्र की पर्वतीय जनजातियाँ आज भी नृत्यगान में अत्यन्त निपुण हैं।

**4. किन्नर**— महाभारत<sup>8</sup> में उल्लिखित विवरण के अनुसारकुन्तीपुत्र अर्जुन दिग्विजय के दौरान उत्तर में किम्पुरुषवर्ष जा पहुँचे थे; जो मुख्यतः किन्नरों की निवासभूमि माना जाता है। यह प्रदेश नेपाल का सीमावर्ती हिमालय का भूभाग था, जो कालान्तर मेंकैलास-मानसरोवर के पश्चिमी क्षेत्र पर्यन्त सिमट कर रह गया और इसे ही किन्नरप्रदेश कहा जाने लगा। संस्कृत कवियों ने अपनी कृतियों में अनेकशः किन्नरों का उल्लेख किया है, जिससे ज्ञात होता है किन्नरों की निवासभूमि हिमालय पर्वत पर कैलास मानसरोवर क्षेत्र के समीप थी। उदाहरणतया महाकवि कालिदास के कुमारसम्भवम्,<sup>9</sup>रघुवंशम्<sup>10</sup> एवं अभिज्ञानशाकुन्तलम्<sup>11</sup> को देखा जा सकता है। वर्तमान किन्नरभूमि हिमालय के 'कुनाउर' (कनौर), बुशहर एवं कुलू प्रान्त हैं, जिसे कुमायूँ के पश्चिम की ओर रहने वाली सम्प्रति खस, कुनेत आदि जनजातियों से सम्बन्धित माना जा सकता है। प्रो. जयचन्द्र विद्यालंकार ने सतलज की ऊपरी घाटी चन्द्रभागा के उद्गमक्षेत्र को, जिसे आधुनिक कनौर के नाम से जाना जाता है, वह किन्नरों की मूल निवासभूमि रही होगी।<sup>12</sup>पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने भी अपनी यात्राओं में भाषाशास्त्रीय आधार पर कनौर को किन्नरप्रान्त सिद्ध किया है, जो तिब्बत की सीमा पर सतलज की ऊपरी घाटी में 70 मील लम्बा और प्रायः उतना ही चौड़ा क्षेत्र है, जिसके अन्तर्गत 3800 वर्गमील क्षेत्र में रामपुर बुषहर रियासत थी। जहाँ आज भी किन्नरी (कनौरी) भाषा बोली जाती है<sup>13</sup>।

वस्तुतः किन्नरी या कनावरी भाषा (कनौरी) सतलज नदी की ऊपरी घाटी 'षिमला' के उत्तरपूर्व तथा टिहरी के उत्तरीक्षेत्र में बोली जाती है<sup>14</sup>। अतः इसी प्रदेश को किन्नरप्रदेश मानना उचित प्रतीत होता है; वैसे हिमालय की आदिमजाति के रूप में इन्हें ग्रहण किया जाता है, किन्तु अब केवल सतलज की ऊपरी घाटी कनौर (रामपुर, बुषहर के आस पास के) क्षेत्र में ये विद्यमान हैं। "कनौरी" बोली के आधार पर चाटुर्ज्या ने इनकी संख्या 26000 निर्दिष्ट की है। ये लोग नाच, गाने एवं मेले के शौकीन होते हैं<sup>15</sup>। महाकवि कालिदास ने 'उत्सवसंकेत'<sup>16</sup> में जिन पर्वतीय गणों का किन्नरों के साथ उल्लेख किया है, उन्हें किन्नरों से भिन्न नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उत्सवसंकेत इन्हीं किन्नरों का शिथिल सामाजिक नियमों के वैवाहिक स्वरूप का पोषक है। ज्ञातव्य है कि पार्जीटर महोदय ने भी 'उत्सव' का अर्थ 'प्रणय' तथा 'संकेत' का अर्थ 'उसके सिद्धि की चेष्टा' स्वीकार किया है<sup>17</sup>। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने वर्तमान 'कनौर क्षेत्र' को प्राचीन किन्नरों से सम्बन्धित माना है<sup>18</sup>। अतः किन्नर भी उसी क्षेत्र के मूल निवासी माने जा सकते हैं। अब ये कृषि, उद्यान एवं व्यापार के रूप में भेड़, बकरी आदि पर्वतीय पशुओं का पालनभी करते हैं। अंगूरी मदिरा पीकर देवी या देवता के सामने मदमस्त नृत्य इनकी प्रमुख विशेषताओं में से एक है।

**5. किरात**— प्राचीन संस्कृतसाहित्य में 'किरात' संज्ञक जनजाति का पर्याप्त उल्लेख प्राप्त होता है। आर्षकाव्य महाभारत में पाण्डवों की यात्रा किरातराज्य में हुई थी, जिसका प्रतिनिधि सुबाहु था<sup>19</sup>। राजसूययज्ञ में किरातों ने युधिष्ठिर को उपहारके रूप में चमड़े, चन्दन, सोना आदि द्रव्यों को भेंट स्वरूप प्रदान किया था<sup>20</sup>। मनु के अनुसार किरातों का पहिले तो अस्तित्व क्षत्रियों जैसा था, किन्तु बाद में क्रियालोपवधात् ये शूद्रवत् हो गये<sup>21</sup>। महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में किरातों का पर्याप्त उल्लेख किया है; जिसके अनुसार यह जनजाति मुख्यतः हिमालयप्रान्त में रहा करती थी<sup>22</sup>। षिकार करना इनका मुख्य धन्धा था। इसके साथ-साथशिकार के दौरान मारे गये वन्यजीवों से प्राप्त मूल्यवान् पदार्थ-गजचर्म, मृगचर्म, व्याघ्रचर्म, गजमुक्ता तथा हाथीदौत आदि को ये लोग व्यापारियों को बेंच देते थे। अवसर के अनुसार इन मूल्यवान् पदार्थों को ये लोग राजाओं, महाराजाओं को उपहार के रूप में भेंट भी करते थे। रघुवंशम् के अनुसार इनकी स्त्रियाँ राजपरिवार में चँवर डुलाने का कार्य किया करती थी<sup>23</sup>। ये चँवर भी इनके द्वारा उपलब्ध कराये गयेचँवरी मृग की पूँछ के बालों से बनते थे। फूषे महोदय का मन्तव्य है कि किरातों का अस्तित्व, वैदिकयुग में जब आर्यों के कबीले भारत में अग्रसर हो रहे थे, उस समय भीथा; क्योंकि आर्यों के बढ़ते समूह में सार्थवाहों की रक्षा करते हुए योद्धा आगे-आगे चलते थे कि कहीं हजारों कीपहचान एवं संख्या में रहने वाले 'किरात' उन पर हमला न कर दें।

आचार्य सत्यव्रत सिद्धान्तलंकार ने सर हर्बर्ट रिसले, ए.सी. हेडल, डॉ. गुहा आदि नृतत्वशास्त्रियों केमत को उद्धृत करते हुए इन्हें 'मंगोलायड' वर्ग में स्वीकार किया है; जिसके अनुसार इनके प्रदेश हिमालय के नेपाल, असम, और वर्मा हैं<sup>24</sup>। इसी प्रदेश के निवासी भारतीय साहित्य के किरात हैं; जो सामान्यतः गोरे रंग, चौड़े एवं कम बालों वाले सिर, छोटी-चौड़ी नाक, चपटे चेहरे, एवं छोटे कदवाले हैं। डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी भी इसे मंगोलों से ही संबद्ध मानते हैं। इनकी स्थिति आज भी वर्मा, असम, नेपाल तथा कर्षीर के सीमान्त प्रान्तों में देखने को मिलती है<sup>25</sup>। पेरीप्लस के अनुसार 'किरात' गंगा के मुहाने के उत्तरीप्रान्तमेंनिवास करते थे। डॉ. मोतीचन्द्रने इन्हें तिब्बती-वर्मीजाति से सम्बन्धित स्वीकार किया है, जो पशुओं की खाल (चमड़े का वस्त्र) पहनते थे और कन्दमूल फल आदि खाकर जीवन निर्वाह करते हुये, हिमालय के ढाल, वारीसाल या ब्रह्मपुत्र की घाटियों में विचरण करते थे<sup>26</sup>। डॉ. मजूमदार के अनुसार 'किरात' भारत की प्राचीनतम हिंसकजनजाति है, जो 'तिब्बती-वर्मी' जनजातियों से सम्बन्धित है<sup>27</sup>। इनका निवासप्रदेश हिमालयक्षेत्र में गंगा के उद्गम से

लेकर नेपाल के विस्तृत भूभाग तक फैला हुआ है। डॉ. भगवतषरण उपाध्याय भी इन्हें 'तिब्बत-वर्मी वर्ग' के अन्तर्गत मानते हुये, इन्हें तिब्बत, लद्दाख, जस्कर और रूपु प्रदेस के निवासी मानते हैं<sup>28</sup>।

महाकवि कालिदास के अनुसार 'किरात' गंगा के उदगमक्षेत्र की हिमालय कीउपत्यकाओं मेंनिवास करते थे औरयदा-कदाशिकार की तलाश में हिमालय के उच्चवर्ती प्रदेशों में भी पहुँच जाते थे;<sup>29</sup> यद्यपि हिमालय कानिचला भाग ही किरातों की मुख्यनिवासभूमि था। यही कारण है कि डॉ. वासुदेवषरण अग्रवाल ने हिमालय की तराई को ही किरातप्रान्त स्वीकार किया है<sup>30</sup>। इस प्रकार मुख्यतया नेपाल की वर्तमान लिम्बु, याखा, चेपंग आदि जनजातियाँ किरात जनजाति से सम्बन्धित की जा सकती है। डॉ.लोधम ने पुराणों के 'राजकिरात' लोगों को चेपंगजनजाति के समकक्ष माना है<sup>31</sup>। पं. राहुल सांकृत्यायन ने अपने हिमालय यात्रावृत्त में भाषा सम्बन्धी सूक्ष्म गवेषणा के आधार पर गंगा के पनढर के पूर्वी छोर से सम्पूर्ण नेपाल की राई, लिम्बू एवम् याखा जनजातियों को किरातों से संबद्ध बताया है<sup>32</sup>। अतः 'किरातों'को तिब्बती-वर्मी कहने की अपेक्षा तिब्बती-हिमालयन कहना अपेक्षाकृत अधिक उचित प्रतीत होता है, क्योंकि इसका अस्तित्व लद्दाख से आसाम तक किसी न किसी जाति के रूप में विद्यमान है। इनकी संख्या लगभग एक लाख है।डॉ.सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपने भाषा सम्बन्धी सर्वेक्षण से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर 'किराती' या 'किरन्ती' भाषा-भाषी लोगों की संख्या 88000 निर्दिष्ट की है<sup>33</sup>। महाकवि कालिदास के अनुसार ये लोग अर्धनग्न, धनुषबाण लिए हुये, सिर या कमर में मोरपंख लगाये हुये घूमा करते थे।सम्प्रति ये लोग खेती एवम् पशुपालन आदि करके अपना जीवन व्यतीत करने लगे हैं, फिर भी ये लोग अपनी प्राचीन प्रवृत्तियों कोआज भी बनाये हुये हैं।

**6. नाग**—महाकवि कालिदास के अनुसार, नागजनजाति की कन्याएँ बहुत सुन्दर होती थीं तथा पर्वतीय द्वीपों या नदियों के किनारे शीतल जलवायु वालेभूभागों में रहा करती थीं।<sup>34</sup> पुराणों में इन्हें रमणीय द्वीप का निवासी बताया गया है, किन्तु प्रधानतया यह हिमालय की ही एक पर्वतीय जाति थी, जो किरात किन्नर आदि यहाँ के आदिम निवासियों की भाँति एक पृथक् शाखा थी। हवीलर के अनुसार गढ़वाल में नागों का सम्बन्ध नागपुर, उरगपुर पट्टियों से है। प्राचीन परम्पराओंसे पता चलता है कि अलकन्दा की उपत्यका में नागों की बस्तियाँ थीं। पाण्डुकेषर में आज भी शेषनाग की पूजा की जाती है। रतगाँव में भेकलनाग, तलोर में उरगलनाग, मरगाँव में वनपुरनाग, जेलम में लोहम्बिहानाग, तथा नागनाथ में पुष्करनाग आज भी पूजे जाते हैं। हिमालय का यह भाग नागों से सम्बन्धित है।<sup>35</sup> राहुल सांकृत्यायन ने अपनी यात्राओं में यहाँ बहुत से ग्रामों में नागमन्दिरों के अवशेष प्राप्त किए, जिनमें नागपुर दसौली पैनखाड़ा आदि नागों के प्रसिद्ध गढ़ माने जाने वाले स्थानों के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उरगम (पैनखण्डा) में वैस्वानाग, दसौली में तक्षकनाग आदि की आज भी प्रतिष्ठा देखी जाती है। इसके अतिरिक्त नागों के अन्य अनेक गढ़ भारत के विभिन्न भागों में देखने को मिलते हैं।<sup>36</sup> संभवतः हिमालय के अन्यान्य भूभागों में 'नागजनजाति' के अन्य बहुत से प्राचीन गढ़ थे।

वेषभूषा के रूप में ये 'नाग' केवल अधोवस्त्र धारण करते थे। इनका शेष शरीर अनावृत्त रहता था। षिर पर घने केश होते थे, जिस पर ये फणाकार मुकुट—सा बनाये रखते थे। टी. डब्ल्यू डेविड ने इन्हें मरमेड तथा मरमेड के समान शीतजलवायु वाले प्रदेशों में आमोद—प्रमोद, करने वाला तथा विविध विलासों एवं वैभवों से युक्त वातावरण में निवास करने वाला बताया है।<sup>37</sup>ध्यातव्य है कि द्वीपीय प्रदेश, नदी घाटियों के अतिरिक्त भारत में यदि कहीं अन्यत्र शीतल जलवायु सुलभ है, तो हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र में है। अतः इन नागोंको हिमालय के कुमायूँ गढ़वालका मूलनिवासी मानना उचित प्रतीत होता है। ऐसा ही जलीय समीकरण महाकवि कालिदास के रघुवंशम् महाकाव्य में भी देखने को मिलता है; जहाँ महाकवि ने 'कालियनाग' कासंसर्ग यमुना से तथा 'कुमुदनाग' का संसर्ग सरयू से दिखलाया है।<sup>38</sup>

**7. पुलिन्द**—आदिम जाति के रूप में पुलिन्दों का उल्लेख आर्षकाव्य रामायण<sup>39</sup> एवं महाभारत<sup>40</sup> में स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है,जिसके अनुसार पुलिन्दों की गणना म्लेच्छों के साथ की गई है। अमरकोष ने भी पुलिन्दों को म्लेच्छजाति के अन्तर्गत माना गया है—**भेदाः किरातषबराः पुलिन्दा म्लेच्छजातयः**।महाकवि कालिदास—वर्णित पुलिन्दों को भी टीकाकार आचार्य मल्लिनाथ ने 'म्लेच्छ' ही मानाहै।<sup>41</sup> महाभारत में जिन म्लेच्छजातियों कावर्णन किया गया है; उनमें यवन, चीन, काम्बोज, पारसीक आदि सीमान्त प्रदेशों की बाहरी जातियाँ हैं; किन्तु किरात, शबर और पुलिन्द आदि प्रागैतिहासिक काल से ही भारतीय आदिम जनजातियों के रूप में रहे हैं। महाभारतयुद्ध में इन जनजातियों ने भाग भी लिया था। इनका अपना स्वतंत्र राज्य था; जिसकी राजधानी 'पुलिन्दनगर' थी। अतः इन्हें म्लेच्छ मानना उचित नहीं प्रतीत होता है। संभवतः समय—समय पर राष्ट्र में लूटपाट आदि आन्तरिक अषान्ति उत्पन्न करने के कारण अथवा षिकार या वन्य—जीविका ग्रहण करने के कारण इन्हें 'म्लेच्छ'कह दिया गया।

महाकवि कालिदास ने पुलिन्दों का उल्लेख वन्य जनजाति के रूप में किया है; जिन्होंने कुषावती से अयोध्या को पुनः राजधानी का रूप प्रदान करने वाले सम्राट्'कुष' की विन्ध्यश्रेणियों में कन्द—मूल, फलादि की भेंट देकर उनके दर्शन किये थे।अतः पुलिन्दों का प्रदेश विन्ध्याचल की मध्य तथा पूर्वी पर्वतश्रेणियों का क्षेत्र रहा होगा। महाकवि बाण ने इसी भाग को 'विन्ध्याटवी' कहा है; जिसमें पुलिन्दों का भी वर्णन किया गया है। बृहत्कथा में सानुदास नामक सार्थवाह पर चम्पा से ताम्रलिप्ति तक के मार्ग में पुलिन्दों द्वारा आक्रमण किये जाने का उल्लेख मिलता है।<sup>42</sup> अतः विन्ध्य की पूर्वी शृंखला को भी पुलिन्दप्रदेश माना जा सकता है।लेवी महोदय के मत में'कुलिन्द' और 'पुलिन्द' एक ही शब्द हैं। कुलिन्दों के सिक्के हमीरपुर, लुधियाना, सहारनपुर आदि स्थानों से प्राप्त हुये हैं। इस आधार पर इनके इस प्रदेश को विन्ध्याचल की तलहटी में निर्धारित कियाजा सकता है। इन पुलिन्दों को 'विन्ध्यमौलेय'भी कहा गया है।<sup>43</sup>



डी.सी.सरकार के मत में ये 'पुलिन्द' आदिम जनजाति के हैं; जो विन्ध्यपर्वत की पहाड़ियों पर रहते थे। पार्जीटर का मानना है कि पुलिन्दों की कई शाखाएँ थीं। संभवतः कालिदास के 'पुलिन्द' दक्षिणीशाखा से सम्बन्धित थे। ए.पी. करमरकर ने भी गोत्रचिह्न के आधार पर पुलिन्दों को भारतीय आदिम जनजाति के अन्तर्गत स्वीकार किया है। वस्तुतः महाकवि कालिदास के 'पुलिन्द' अर्द्धसभ्य पर्वतीय जनजाति थे; जो पार्जीटर निर्दिष्ट दक्षिणीशाखा में विन्ध्यप्रदेश के अन्तर्गत स्वीकार किए जा सकते हैं। यदि हिमालयीय शाखा से कभी इनका सम्बन्ध रहा हो, तो आसाम-हिमालय के दक्षिणीप्रदेश को पुलिन्दों की निवासभूमि माना जा सकता है; क्योंकि दक्षिणी आसाम में हाथी अधिकांशतः होते हैं और पुलिन्द उन हाथियों का षिकार करके हाथीदाँत केबदले व्यापारियों से पर्याप्त धन प्राप्त करते थे। व्यापारियों द्वारा हाथीदाँत एकत्रित करने के लिए पुलिन्दों को अग्रिम धनराशि के रूप में बयानादियाजाता था। चाण्डालवर्ग के पौण्ड्रों के साथ इन पुलिन्दों का भी वैदिकसाहित्य<sup>44</sup> में उल्लेख प्राप्त होता है; जिसके आधार पर यह प्रान्त झारखण्ड, छोटानागपुर प्रतीत होता है। अतः विन्ध्यपर्वत की मध्यश्रेणियों से दक्षिणीविहार की सीमा तक प्राचीन पुलिन्दों का प्रदेश मानना उचित है। महाकवि कालिदास का वर्णन भी इसी के अनुकूल है। मुख्यतः वन्य जनजाति होने के कारण ये 'पुलिन्द' कन्दमूल, फलफूल, हाथीदाँत, पशुचर्म आदि एकत्र करते हुये षिकार की खोज में सुदूरवर्ती वनों में घूमा करते थे। यद्यपिहाथीदाँत एकत्र करने के लिये भी ये लोगनेपाल के मध्य हिमालय या आसाम में जाते थे; किन्तु मूलतः इन्हें मध्यपूर्वी विन्ध्यपर्वतीय श्रेणियों के वनप्रान्त से सम्बन्धित समझना उचित प्रतीत होता है।

**8. राक्षस**—संस्कृतसाहित्य में 'राक्षस' जाति को विविध नामों से सम्बोधित किया गया है। महाकवि कालिदास ने भी अपनी कृतियों में 'राक्षसों' के निषाचर<sup>45</sup> यातुधान<sup>46</sup> दैत्य<sup>47</sup> दानव<sup>48</sup> असुर<sup>49</sup> नैऋत<sup>50</sup> इत्यादि नामों का उल्लेख किया है; जो इनकी प्रवृत्तियों वंशों, स्थानों आदि के अनुसार इनकी विशेषताओं को अभिव्यक्त करते हैं। इनका देवताओं एवं यक्षों से रक्तसम्बन्ध था; किन्तु आपसी वैरभाव के कारण ये परस्पर युद्ध करते हुये, एक-दूसरे को नीचा दिखाने तथा राज्य-सम्पत्ति को हस्तगत करने में अपना सम्मान समझते थे। रामायणकाल में राक्षसों का मुख्यनिवास 'लंकाद्वीप' था; फिर भी भारत में जनस्थान आदि इनके विविध प्रदेशों में उपनिवेश स्थापित थे। रात्रिभ्रमण, हिंसक-आक्रमण, स्त्री-अपहरण आदि इनकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ थी। मैदानी तथा पर्वतीय प्रदेशों में भी इनके अस्थायी आवास थे।

**9. निषाद**—प्राचीन संस्कृतसाहित्य में 'निषाद' जनजाति का पर्याप्त उल्लेख प्राप्त होता है; जिसमें ऐतरेयब्राह्मण के अनुसारये लोग दस्युवर्ग में परिगणित थे; जो व्यापारियों को मारकर गड्ढों में फेंक देते थे।<sup>51</sup> पुराणों में इन्हें महाराज वेण के दाहिने अंग से उत्पन्न बतलाया गया है।<sup>52</sup>

महाकवि कालिदास के वर्णनों से ज्ञात होता है कि निषाद जनजाति का अस्तित्व उत्तरप्रदेश के मैदानी भागों तक फैला हुआ था। निषाद लोग अपना एक संगठन (स्वायत्तषासन) बनाकर एक मुखिया के संरक्षण में अपने पुरों में निवास करते थे।<sup>53</sup> श्रीराम वनवास के दौरानअयोध्या से निषादराज्य होकर वन में चित्रकूट की ओर गये थे। अतः सुस्पष्ट है कि उस समय ये निषाद लोग कोषल की दक्षिणीसीमा पर गंगातट पर बसे हुये थे। डॉ. वासुदेवषरण अग्रवाल के मतानुसार निषाद जनजातियों का आर्यों से मेल-मिलाप था और उनके निवासक्षेत्र की सीमा कोषलराज्य की सीमा तक विस्तृत थी।<sup>54</sup> उस समय इनका प्रमुख व्यवसाय नौका द्वारा यात्रियों को गंगा पार कराना था।<sup>55</sup> ये लोग षिकार करके भी अपनी आजीविका का निर्वाह करते थे; जिसमें हिरन आदि पशुओं के अतिरिक्त पक्षियों काशिकार भी सम्मिलित था।<sup>56</sup> अतः इन्हें व्याध या बहेलिया के रूप में भी जाना जाता था। उस समय निषादों को 'गुह' कहकर भी सम्बोधित किया जाता था। ये लोग समाज में अधम और अस्पृश्य समझे जाते थे। निषाद जनजाति के लोग सामान्यतया दक्षिणभारत में निवास करने वाले, छोटे कद वाले, कौव्वे के समान श्यामवर्ण वाले, चपटी नाक, छोटे पैर, लाल आँख तथा घुंघुराले बालों वाले होते थे। आर.के.मुखर्जी के अनुसार निषाद लोग निम्नजाति के चाण्डाल के समान अस्पृश्य समझेजाते थे। इनका प्रमुख व्यवसाय षिकार करना था।<sup>57</sup> सुनीति कुमार चटर्जी के मत में यद्यपि 'निषाद' आस्ट्रिकवर्ग से भिन्न नहीं हैं, तथापि बाहर से आने वाली जातियों में से एक हैं, फिर भी आदिम जनजातियों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें यहाँ के आदिवासियों की श्रेणीमें परिगणित करना ही उचित है।<sup>58</sup> सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने डा. हट्टन, वी.एस.गुहा तथा ए.सी.हैड्डन के मतों के आधार पर निषादों को प्रोटो आस्ट्रालायड स्वीकार करते हुये आदिद्रविड बतलाया है, जिन्हें वे मध्यप्रदेश, एवं दक्षिणभारत के विभिन्न क्षेत्रों का निवासीस्वीकार करते हैं। ये चाकलेटी कालेरंग वाले होते थे तथा जंगलों में यत्र तत्र विचरण करते रहते थे।<sup>59</sup>

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि 'निषाद' जनजाति भारत की प्रागार्य आदिम जनजाति है, जो सिन्धु-घाटी-सभ्यता की समकालीन प्रतीत होती है। अतः इसे द्रविड भी कहा जा सकता है; किन्तु सभ्यता या संस्कृति की दृष्टि से ये आर्यों के ही समान थे। कालान्तर में ये पतनोन्मुख होकर, व्याधवृत्ति वाले, तथालूट-पाट करके अपनी जीविका चलाने लगे। सम्प्रति ये लोग उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश तथा बिहार आदि प्रदेशों में नदियों के तटों पर यत्र तत्र फैले हुये हैं। मद्रास, त्रावणकोट तथा उड़ीसा के समुद्रतटों पर भी ये लोग आज भी मत्स्य एवं नौका उद्योग में संलग्न हैं।

**10. वनेचर**—महाकवि कालिदास ने अपनी काव्यों में 'वनेचर जनजाति' के स्त्री-पुरुषों का पर्याप्त उल्लेख किया है; जिससे यह ज्ञात होता है कि ये लोग अपनी स्त्रियों को लेकर प्रायः आजीविका की खोज में एक वन से दूसरे वन में भ्रमण करते रहते थे। स्त्रियाँ भी स्वच्छन्द रूप से वन-विहार किया करती थीं। इस प्रकार की एक वनेचरी का मध्यप्रदेश के संभवतः आम्रकूट में कुंज की शीतलता का सेवन करते हुये अत्यन्त ललित वर्णन किया है।<sup>60</sup> जो अपने पुरुषों के साथ कार्य करतेहुये आजीविका से क्लान्त होकर या सूर्यास्त से सन्तप्त होकर, घने कुंज में मनोरंजन एवं विलासपूर्ण विश्राम करने

लगती हैं। मूलतः इन्हें प्राचीन पर्वतीय जनजाति कहा जा सकता है। यद्यपि इनका आवास आज भी अस्थायी देखा जाता है, फिर भी ये मुख्यतया राजस्थान, मध्यप्रदेश (विन्ध्य, सतपुड़ा की पूर्वी श्रेणी, आम्रकूट) तथा उ.प्र. के पर्वतीय क्षेत्रों में देखे जाते हैं।

ग्रियर्सन के मत में ये पश्चिमी तथा दक्षिणीभारत में सर्वत्र दिखाई देते हैं। सम्प्रति कहीं कहीं इन्हें 'बनजारा' भी कहा जाता है। 'बनजारा' या 'बनजर' शब्द 'वनेचर' या 'वनचर' के अपभ्रंश हैं। सत्यव्रत सिद्धांतालंकार ने इन्हें अपराधी जनजातियों में परिगणित किया है। ये बनजारे आज भी अपना प्राचीन रूप ग्रहण किए हुये मैदानी या जंगली भागों में कुत्तों को साथ लिए हुये षिकार की तलाश में घूमते रहते हैं। राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश के जिलों में अभी भी ये लोग बहुतायत में पाये जाते हैं। भगवानदास केला ने 1941 की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या 3554 निर्दिष्ट की है, जिसमें उत्तरप्रदेश को उपेक्षित छोड़ दिया गया है; जबकि यहाँ 'बनजारे' पर्याप्त संख्या में पाये जाते हैं। सम्प्रति इनकी संख्या 10000 से अधिक है, जो प्रायः ग्रामों या नगरों में जाकर जंगली जानवरों की खाल, सींग, शहद, गोह आदि का तेल इत्यादि बेंच कर अपना जीवन यापन करते हुये दिखाई देते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से उपर्युक्त जनजातियों तथा उनके प्रदेशों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है; जो जिज्ञासु शोधार्थियों को उनकी भाषा, उनके सामाजिक रीति रिवाज, रहन सहन, खान पान आदि विविध विषयों को जानने अथवा उनके सूक्ष्म अध्ययन में सहायक सिद्ध होगा।

### सन्दर्भ :-

1. काव्यादर्श || 1/5 ||
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम् ||
3. रघुवंशम् || 5/53-60 ||
4. प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास, डॉ. रांगेय राघव, पृष्ठ 67 ||
5. रामायण, उत्तरकाण्ड || 113/10-11 ||
6. रघुवंशम् || 2/60 ||
7. कुमारसम्भवम् || 1/7 ||
8. महाभारत, सभापर्व || 29/1-5 ||
9. कुमारसम्भवम् || 1/11; 3/33; 5/56; एवम् 6/69 ||
10. रघुवंशम् || 4/78 ||
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम् || अंक 7 ||
12. प्रोसीडिंग एण्ड ट्रंजेक्शन्स आफ द सिक्स्थ आल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेंस, पटना, 1930, पृष्ठ 112
13. किन्नर देश में राहुल सांकृत्यायन ||
14. इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया (एटलस) वाल्यूम 25, सन् 1931 ||
15. आदिवासी || भारत सरकार, दिल्ली, पृष्ठ 56, सन् 1956 ||
16. रघुवंशम् || 4/78 ||
17. मार्कण्डेयपुराण का अनुवाद, पृष्ठ 216 ||
18. भारतसावित्री || पृष्ठ 136 || दिल्ली, सन् 1957 ||
19. महाभारत || वनपर्व || 140/25-26 || सभापर्व || 48/8 || विष्णुपुराण || 2/3/8 ||
20. महाभारत || सभापर्व || 48/8 ||
21. मनुस्मृति || 10/43, 44 ||
22. रघुवंशम् || 4/76 || एवम् || कुमारसम्भवम् || 1/6, 15 ||
23. रघुवंशम् || 16/57 ||
24. भारत की जनजातियाँ तथा संस्थाएँ, देहरादून, 1960, 46 एवं 49 ||
25. हिन्दू सभ्यता || डॉ. मुखर्जी || पृष्ठ 71 ||
26. सार्थवाह || पटना, 1953, पृष्ठ 100 ||
27. एन्सिएण्ट इण्डिया || मजुमदार || पृष्ठ 373 ||
28. कालिदास का भारत || काशी || 1963, पृष्ठ 108 ||
29. कुमारसम्भवम् || 1/15 ||
30. भारत-सावित्री || दिल्ली || 1957, पृष्ठ 135 ||
31. हिमालय गजेटियर || वाल्यूम, 2, पृष्ठ 36 ||
32. हिमालय परिचय || इलाहाबाद, 1953, पृष्ठ 42 ||
33. आदिवासियों की भाषायें, आदिवासी प्रकाशन, सूचनाप्रसारण मंत्रालय, दिल्ली, 1959, पृष्ठ 69 ||
34. कुमारसम्भवम् || 1/20 || तथा रघुवंशम् || 16/76, 88 ||
35. भारत का इतिहास, हवीलर || हिमालय परिचय से उद्धृत || इलाहाबाद, 1953, पृष्ठ 42 ||
36. हिमालय परिचय, इलाहाबाद, 1953, पृष्ठ 51 ||
37. बुद्धिष्ट इण्डिया, टी. डब्ल्यू रज डैविड, कोलकाता, पृष्ठ 100 ||
38. त्रस्तेन तार्क्ष्यात् किल कालियेन || रघुवंशम् || 6/46 || नागेन लौल्यात् कुमुदेन || 16/76 ||

39. वाल्मीकिरामायण/किष्किन्धाकाण्ड/43/1 ||
40. महाभारत/23/14 एवम् 186/80 ||
41. रघुवंशम्/16/19 एवम् 31 || संजीवनी टीका ||
42. बृहत्कथा || 18/171 ||
43. मार्कण्डेयपुराणः एक सांस्कृतिक अध्ययन, इलाहाबाद, 1962, पृष्ठ 152 ||
44. ऐतरेयब्राह्मण || 8/718 ||
45. रघुवंशम् || 10/45 ||
46. रघुवंशम् || 12/45 ||
47. रघुवंशम् || 10/86 एवम् 12/87 ||
48. अभिज्ञानशाकुन्तलम् || 7/30 ||
49. विक्रमोर्वशीयम् || 1/4 के पश्चात् रम्भा का कथन ||
50. कुमारसम्भवम् || 2/32 ||
51. ऐतरेयब्राह्मण || 8/11 ||
52. श्रीमद्भागवतमहापुराण || 4/14 ||
53. रघुवंशम् || 13/53 एवम् 15/52 ||
54. भारत की मौलिक एकता, प्रयाग 1954, पृष्ठ 127 ||
55. गंगा निषादादृतनौविशेषस्तार संधामिव सत्यसन्धः || रघुवंशम् || 14/52 ||
56. निषादविद्वाण्डज..... || रघुवंशम् || 14/70 ||
57. ऐन्सिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद 1957, पृष्ठ 122 ||
58. आदिवासी प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली 1959, पृष्ठ 64 ||
59. भारत की जनजातियाँ तथा संस्थाएँ, देहरादून 1960, पृष्ठ 48-49 ||
60. पूर्वमेघ || 20 ||

डॉ. मिथिलेश पाण्डेय

एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,  
के. ए. (पी.जी.) कालेज, कासगंज (उ.प्र.)